सेवाग्राम के दर्शन

यशपाल

सन 1939 में दूसरा महायुद्ध आरंभ हुआ तो ब्रिटिश साम्राज्यशाही सरकार ने भारत की इच्छा के विरुद्ध भी देश को उस युद्ध में लपेट लिया। उस समय देश के सभी राजनैतिक दल युद्ध में भाग लेने के विरुद्ध थे। ब्रिटिश सरकार के इस अन्याय के विरोध में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने शासन से असहयोग कर त्यागपत्र दे दिए। कांग्रेस ने गांधी जी के नेतृत्व में युद्ध-विरोध का आंदोलन तो आरंभ किया परंतु आंदोलन को व्यक्तिगत सत्याग्रह की सीमा में ही रखा। वामपक्षी जनता, कम्युनिस्ट और श्री सुभाष बोस के अनुयायी - फारवर्ड ब्लाक के लोग - युद्ध का विरोध सार्वजनिक आंदोलन के रूप में चाहते थे। मैं उन दिनों 'विप्लव' का संपादन और प्रकाशन कर रहा था और विप्लव में लगातार सार्वजनिक आंदोलन के पक्ष में लिख रहा था।

मध्य प्रदेश के वामपक्षी लोगों ने साम्राज्यवादी युद्ध के विरोध में आंदोलन को सार्वजनिक रूप देने की माँग के लिए एक प्रांतीय सम्मेलन का आयोजन किया था। इस सम्मेलन का सभापति उन्होंने मुझे बनाना चाहा। इसी प्रसंग में नागपुर गया था। नागपुर पहुँच कर सेवाग्राम का दर्शन करने की इच्छा हुई। गांधी जी के मुख से ही समझना चाहता था कि साम्राज्य-विरोधी युद्ध और स्वराज्य के सार्वजनिक उद्देश्यों से चलाए गए आंदोलन को व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप देकर व्यक्तिगत प्रश्न क्यों बनाया जा रहा है? दूसरी बात यह थी कि मनुष्य समाज ने सहस्रों वर्षों के प्रयत्न से जिस औद्योगिक सभ्यता का विकास किया है, उसे छोड़कर मनुष्य समाज के कल्याण के लिए उसे फिर से घुटने के बल रेंगने वाले चर्खा और घरेलू उद्योग-धंधों के युग में पहुँचा देने का यत्न करने वाले 'महात्मा' के दर्शन के अवसर की उपेक्षा करना भी उचित न जान पड़ा।

अपने सहृदय यजमान अर्थात मेजबान के सम्मुख अपनी इच्छा प्रकट की। वे अपनी गाड़ी में सेवाग्राम तक पहुँचा देने के लिए तैयार हो गए। नागपुर नगर पठार के इलाके में होने के कारण खासी गरम जगह है। कड़कती धूप में सत्तावन-अट्ठावन मील का सफर विशेष आर्कषक न था परंतु महात्मा जी के दर्शन स्वयं उन्हीं की कुटिया में करने का प्रलोभन भी प्रबल था। इसलिए चले।

धूप तेज थी, चारों ओर का प्रदेश खुश्क। यह इलाका संतरों के लिए प्रसिद्ध है। संतरों से लदे वृक्ष देखने में सुहावने भी खूब जान पड़ते थे परंतु फल धूप की तेजी से फीके पड़ गए थे; जैसे सुंदर वस्त्रों में लिपटी नगर की स्वास्थ्यहीन, निस्तेज नारियाँ। हाँ, उन संतरों के बागों में पेड़ों को सींचने वाली और फल तोड़ इकट्ठे करने वाली ग्रामवधुएँ वैसे विरस न थीं - छिलके पर कुछ हरियाली और रस में तुर्शी भी मौजूद थी।

चिलचिलाती धूप में सामने वर्धा से आने वाली लारियों से उड़ते गर्द के बादलों को पार करते चले जा रहे थे। उस तपी हुई सड़क पर खद्दर का कुर्ता, जाँघिया और गांधी टोपी पहने, कंधे से कंबल में लिपटता छोटा-सा बिस्तर लटकाए, हाथ की लाठी पर तिरंगा फहराए चले आते चार सज्जन दिखाई दिए। अनुमान किया, सत्याग्रह का व्रत लेकर देहली की पैदल यात्रा करने वाले स्वयंसेवक होंगे। मध्य प्रदेश में इस प्रकार का सत्याग्रह प्रायः होता रहा है। इटारसी स्टेशन पर भी ऐसे एक सज्जन के दर्शन हुए थे। परिचय कराया गया था कि यह सज्जन पहले दो बार डेढ़-डेढ़ सौ मील की पैदल यात्रा कर प्रांत की सीमा पर पहुँच चुके थे। सीमा लाँघने से पूर्व ही पुलिस इन्हें गिरफ्तार कर लेती है और रेल से सौ-डेढ़ सौ मील लौटा कर पुनः यात्रा आरंभ करने के लिए छोड़ देती है। ये सज्जन 'किंग आर्थर' की मकड़ी की तरह अपना प्रयत्न फिर आरंभ कर देते हैं।

ऐसे उत्साही और दृढ़व्रती कार्यकर्ताओं के मन की भावना जानने की इच्छा हुई। ठीक उनके समीप पहुँच कर कार के सहसा रुक जाने से वे चकित भी हुए। गाड़ी से निकल कर उनसे अंग्रेजी में पूछा - 'आप कहाँ जा रहे हैं?'

दृढ़ता से उन्होंने उत्तर दिया - 'हम लोग सत्याग्रही हैं। हम दिल्ली जा रहे हैं।'

'इससे क्या लाभ?'

'हम जा रहे हैं, आप जो चाहें कर सकते हैं,' उन्होंने चुनौती दी। समझ में आया सत्याग्रहियों ने मुझे अपना मित्र नहीं समझा। कुछ आश्चर्य भी न हुआ क्योंकि गांधी जी से मिलने जाते समय खद्दर का कुर्ता पहनना आवश्यक नहीं समझा था। मेरे यजमान श्री पी.वाई. देशपांडे और कामरेड मोटे भी कार से निकल आए। देशपांडे जी के खद्दर के कुर्ते-पायजामे से सत्याग्रहियों को संतोष हुआ और उन्होंने साधुता से बात करना आरंभ किया।

प्रश्न किया - 'इस प्रकार कष्ट उठाकर गाँवों में प्रचार का उद्देश्य क्या है? आप जनता को क्या संदेश देते हैं?'

'युद्ध में सहायता न देने का प्रचार।'

1941 में गांधी जी द्वारा आरंभ किए गए युद्धविरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह का यही रूप था। सत्याग्रही स्वयंसेवकों से फिर प्रश्न किया - 'इस प्रचार का उद्देश्य?'

'हम अपने देश में विदेशी शासन नहीं चाहते, स्वराज्य चाहते हैं।'

'आप जनता को स्वराज्य के लिए आंदोलन करने का संदेश देते हैं?'

'हाँ।' स्वयंसेवकों ने स्वीकार किया।

'परंतु गांधी जी की आज्ञा है कि फिलहाल युद्ध के समय आंदोलन स्वराज्य के लिए नहीं केवल अहिंसा प्रचार के लिए किया जा रहा है।'

'हम भी यही संदेश देते हैं।'

'फर्ज कीजिए, यदि स्वराज्य हिंसा के बिना न मिले तो आप स्वराज्य के लिए यत्न कीजिएगा या अहिंसा के लिए।'

'अहिंसा के लिए।'

'तो यह स्वराज्य के लिए प्रचार कैसे हुआ?'

'स्वराज्य से अहिंसा हो जाएगी।'

'स्वराज्य हो जाने से इन गाँवों में किसानों और मिलों के मजदूरों पर होने वाली हिंसा कैसे रुकेगी? जब तक उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल न मिले, उनकी अवस्था सुधर नहीं सकती। उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल उस समय तक नहीं मिलेगा जब तक उन्हें मालिकों के लाभ के लिए मालिकों की इच्छा से काम करना पड़ेगा और जब तक किसान-मजदूर का शोषण होगा, अहिंसा कायम हो नहीं सकती। किसान-मजदूर का शोषण भी तो हिंसा ही है। सात समुद्र पार जो हिंसा हो रही है, उसकी आपको इतनी चिंता है और आपके अपने देश में गाँव-गाँव, शहर-शहर शोषण के रूप में जो हिंसा है, उसकी आपको चिंता नहीं?

'परंतु जब आप सबको समान करने का यत्न करेंगे तो मालिक श्रेणी के लोग, जो आज मजे में गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, चिल्लाएँगे, हम पर हिंसा हो रही है, तो आप क्या कीजिएगा? करोड़ों आदमियों पर होने वाली हिंसा को दूर करने के लिए सौ-पचास आदमियों को शक्ति प्रयोग से वश में रखना पड़ेगा तो आप क्या कीजिएगा?'

'अभी तो हम लोग सत्याग्रह कर रहे हैं।' दल के नेता ने उत्तर दिया। नौजवान परस्पर एक दूसरे की ओर देखने लगे थे इसलिए नेता ने नमस्कार कर चलने की आज्ञा चाही।

अपने यजमान या मेजबान श्री पी.वाई. देशपांडे, एम.ए., एल.एल.बी. का परिचय नहीं दिया है। आप मराठी के प्रमुख साहित्यिक हैं। कथा साहित्य में राजनैतिक प्रगति का पुट देने का आपको विशेष श्रेय है। नागपुर विश्वविद्यालय के लॉ कालेज में आप लेक्चरार भी हैं। शरीर से बहुत संक्षिप्त; मौके पर चुभती हुई कह देना आपकी प्रकृति का अंग है। देशपांडे विदा लेते हुए सत्याग्रही नवयुवकों को संबोधन कर बोले - 'संसार से विदाई माँगने वाले वृद्धों को अपना स्वर्ग सँभालने दो! तुम तो इस पार्थिव संसार की चिंता करो!' नवयुवकों ने केवल दुविधा के भाव से मुस्करा दिया।

गांधी जी से मुलाकात हो जाना बहुत सरल नहीं है। यदि उनके मंत्रियों ने इनकार कर दिया तो क्या करना होगा? भगवान राम के चरणों को धोने का सौभाग्य पाने के लिए केवट को छल करना पड़ा था। क्या हमें भी महात्मा जी के दर्शनों का पुण्य संचय करने के लिए किसी छल का पाप करना पड़ेगा? इसी विषय पर परिहास करते उस धूप में चले जा रहे थे।

धूप की गरमी का प्रभाव श्री देशपांडे के सूक्ष्म शरीर पर भी पड़ रहा था। वे गाड़ी की रफ्तार बढ़ाते जा रहे थे। 40 से 45, 45 से 50 और आगे भी। भारी गाड़ी होती तो बात थी। भय था, हल्के शरीर की गाड़ी कहीं कलाबाजी न खा जाए। 'हिंसा' की संभावना की ओर ध्यान दिला उन्हें रफ्तार कम करने के लिए कहा। उत्तर मिला - 'स्पीड से मुझे कुछ इमोशनल अटैचमेंट है (तीव्र गति से कुछ भावानुरक्ति है)। इसीलिए गांधीवाद, जो समाज को पीछे की ओर खींच रहा है, मुझे नहीं सुहाता।'

निवेदन किया - 'गांधीवाद अपने को भी मंजूर नहीं परंतु उसका विरोध करने के लिए गाड़ी उलट कर प्राण दे देने के त्याग की भावना का भी स्वागत नहीं कर सकते!'

वर्धा कुछ ही दूर रह गया था। खयाल आया कि गांधी जी के प्रांत और नगरी में गांधीवाद का प्रभाव कितना है, इस बात की आजमाइश कर लेना भी उचित होगा। वर्धा से दो-तीन मील इधर ही एक गाँव में जाकर गांधी जी और उनके उपदेश के प्रभाव के विषय में कुछ जानना चाहा। चर्खे का वहाँ कुछ भी प्रचार नहीं। खद्दर का व्यवहार रुपए में दो आने होगा। वह खद्दर शुद्ध था या जापानी, कहना कठिन है। जब चर्खा नहीं तो शुद्ध खद्दर कहाँ से होगा?

स्वयं वर्धा में जमनालाल जी बजाज का एक मंदिर है। सुना है कि बजाज जी ने अछूतों को अपने मंदिर में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है परंतु अछूत लोग स्वयं ही मंदिर में नहीं जाते। जाते क्यों नहीं? इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं मिला। या तो अछूत मंदिर में जाने का कोई लाभ नहीं समझते या उन्हें साहस नहीं होता। इस जिक्र में याद आ गई राहुल जी की एक बात। गांधी

जी द्वारा अछूतों के लिए मंदिर प्रवेश आंदोलन पर राय देते हुए आपने कहा था - अछूत मंदिर में जाकर ही क्या कर लेंगे? सवाल तो है उनके पेट में रोटी जाने का। इससे तो कहीं अच्छा होता यदि गांधी जी संपूर्ण देश को उपदेश देते कि लोग अंडे खाया करें। इससे देशवासियों का स्वास्थ्य सुधरेगा और देश भर के लिए मुर्गी पाल कर अंडे पैदा करने का ठेका रहता अछूतों के पास ताकि उनकी आर्थिक अवस्था सुधर सकती।

गांधी जी स्वयं रहते हैं सेवाग्राम में परंतु उनका सेक्रेटेरियट वर्धा में है। सेवाग्राम में अंग्रेज सरकार बहादुर ने टेलीफोन लगवा दिया है इसलिए गांधी जी के सेक्रेटरियों और अखिल भारतीय कांग्रेस के मंत्री तथा कार्यकर्ताओं, अखिल भारतीय चर्खा संघ, उनके प्रकाशन विभाग आदि के प्रबंधकर्ताओं को गांधी जी से बातचीत करने में आसानी रहती है। गांधी जी तक पहुँच पाने के लिए पहले सेठ जमनालाल जी बजाज की कोठी की ओर चले। अखिल भारतीय कांग्रेस का कार्यालय बजाज जी की कोठी पर है। आशा थी, वहाँ कृपालानी जी से भेंट होने पर गांधी जी तक पहुँचने का कोई रास्ता निकल आएगा। कृपालानी जी से अपनी फरारी के दिनों से ही कुछ परिचय था।

कृपालानी जी के दर्शन कोठी के बरामदे में ही हो गए। मुझे देखते ही पुकार उठे -'अरे तुम कहाँ? तुझे तो जेल में होना चाहिए था!' उनका मतलब था, व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेकर।

'पर आप भी तो जेल के बाहर ही हैं।' उत्तर दिया। अपनी तुलना इतने बड़े व्यक्ति से करने पर स्वयं ही झेंप भी मालूम हुई इसलिए कहा, 'दादा, यह तो व्यक्तिगत सत्याग्रह है। इसमें बड़े-बड़े व्यक्तियों का भाग लेना ही शोभा देता है। हम तो जनता हैं। जब आंदोलन सार्वजनिक होगा, तभी भाग ले सकेंगे।'

'हूँ, कैसे आया?' उन्होंने फिर प्रश्न किया।

'महात्मा जी के दर्शन की इच्छा है।'

'पहले से समय निश्चय कर लिया है?'

'नहीं। यहाँ नागपुर आने पर खयाल आया।'

'तो महादेव से मिलकर पूछो।'

गांधी जी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई वर्धा में मौजूद नहीं थे। उनकी जगह काम कर रहे थे श्री किशोरीलाल मशरूवाला। उनसे मिलकर गांधी जी के दर्शन की प्रार्थना करने पर उत्तर मिला कि कायदे से हमें पहले समय निश्चित कर लेना चाहिए था। अपनी गलती स्वीकार की और फिर भी प्रार्थना की कि बहुत दूर से आए हैं, फिर आ सकने के अवसर की आशा नहीं है।

मशरूवाला जी ने फोन पर बात कर समय निश्चित कर लिया। मालूम हुआ कि सेवाग्राम में बाहर से आने वाले व्यक्तियों के लिए भोजन की दुकान या होटल की कोई व्यवस्था नहीं है इसलिए स्टेशन के रिफ्रेशमेंट रूम में मिसिर 'केलनर एंड स्पेंसर' का प्रसाद पाने के लिए जाना पड़ा।

गांधी जी से मुलाकात का समय निश्चित हुआ था, संध्या चार बजे परंतु यह लोग सेवाग्राम जा पहुँचे लगभग दो ही बजे। आखिर करते भी क्या...? वर्धा से गांधी जी के आश्रम तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने सड़क बनवा दी है। आश्रम के लिए जगह चुनने में प्राकृतिक सौंदर्य का किस दृष्टिकोण से विचार किया गया है, कहना कठिन है। सुदूर क्षितिज पर पठार के टीलों की अस्पष्ट रेखा जरूर दिखाई देती है। और कुछ नहीं था। लंबे-चौड़े, धूप से तपते हुए मैदान में दो-तीन वृक्ष हैं। कुटियाँ मामूली तौर पर फूस की हैं। गांधी जी की कुटिया और आश्रम के हस्पताल की दीवारें अलबत्ता मिट्टी की हैं। गांधी जी की कुटिया की छत अच्छी मोटी-भारी और मजबूत है। शेष कुटियाँ ऐसी हैं कि अच्छी जोरदार आँधी चलने पर उनके फूस का भी पता चलना कठिन होगा। आश्रम कुछ सूना सा जान पड़ा। शायद बहुत से लोग सत्याग्रह में जेल चले गए थे।

आश्रम के मैनेजर का पता पूछा। मैनेजर श्री शाह एक कुटिया में लेटे हुए थे। कुटिया में खाट जरूर थी परंतु खाट बान से न बुनकर उस पर तख्ते डाल दिए गए थे। तख्तों पर बिछे खद्दर के बिस्तर पर शाह साहब उस्तरे से घुटे हुए सिर पर भीगा तौलिया रखे दुपहर की नींद ले रहे थे। उनकी निद्रा भंग करने की हिंसा के सिवा उपाय न था, सो करना ही पड़ा। प्रार्थना की कि आश्रम को देखना और उसके विषय में कुछ जानना चाहते हैं।

'देख लीजिए।' शाह साहब ने लेटे ही उत्तर दे दिया।

फिर विनय की कि देखने से मतलब फूस की झोपड़ियाँ देख लेने से नहीं है। ऐसी झोपड़ियाँ तो अनेक अवसरों पर देखी हैं। प्रयोजन है उस विचार-धारा को जानने का जिसके कारण आप लोग यह कष्टमय जीवन बिताना उचित समझते हैं।'

'हमें तो इसमें कोई कष्ट जान नहीं पड़ता?' शाह साहब ने लेटे ही लेटे उत्तर दिया।

शाह साहब ने कृपापूर्वक अपने विचार समझाना स्वीकार किया। उन्होंने बैठ जाने के लिए नहीं कहा। बैठ सकने की अनुमति माँगने पर उन्होंने हमें नीचे बिछी चटाई पर बैठ सकने का संकेत कर दिया। कुछ खला तो जरूर पर बैठ गए। उन्होंने बताया कि अपनी इच्छा से गरीबी की हालत में रहने का कारण यह है कि हमारा देश बहुत गरीब है, झोपड़ियों में रहता है और गरीबों के प्रति सहानुभूति होने के कारण हम उन्हीं की तरह रहना चाहते हैं।

निवेदन किया - 'इसमें संदेह नहीं कि आप गरीबों की तरह रहने का प्रयत्न करते हैं परंतु आप उनकी तरह रह नहीं पाते। सबसे बड़ा अंतर तो यह है कि गरीब लोग अपनी इच्छा या शौक से गरीबी में नहीं रहते। वे दोपहर की धूप में सिर पर भीगा तौलिया रखकर आराम से लेट भी नहीं सकते। आपके स्वयं गरीबों की तरह रहने से तो गरीबों का कुछ कल्याण नहीं हो सकता, उनकी भलाई तो उनकी वर्तमान आर्थिक अवस्था में कुछ सुधार होने से हो सकती है।'

'गरीबों की आर्थिक अवस्था में सुधार करने के लिए हमारा चर्खे का तथा घरेलू उद्योग-धंधों का कार्यक्रम है।' मैनेजर साहब ने उत्तर दिया।

कामरेड मोटे बोले - 'प्रश्न घरेलू धंधों और मिलों के धंधों का नहीं। प्रश्न तो यह है कि व्यवस्था ऐसी हो कि मजदूर या किसान लोग अपने परिश्रम से जो पैदावार करें, उसे वे अपने व्यवहार में ला सकें। नए रोजगार बढ़ाने की भी आवश्यकता है ताकि बेकार लोग रोजी पा सकें।'

मैनेजर साहब ने फरमाया - 'समाज में असमानता और शोषण मशीन के कारण होता है। यदि मशीन को हटा दिया जाए तो असमानता कम हो जाएगी और शोषण का साधन न रहने से शोषण न होगा। इसके अलावा सब काम हाथ से किए जाने पर प्रत्येक रोजगार में अधिक आदमियों की आवश्यकता होगी और बेकारी नहीं होगी।'

हम लोगों ने उत्तर दिया - 'मशीन का आप पूर्ण रूप से तो बहिष्कार नहीं कर सकते। उदाहरणतः टेलीफोन, रेलवे आदि ऐसी मशीनें हैं जिनका बहिष्कार कर देने से आज के समाज की व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी। शोषण केवल मशीनों से ही होता हो सो बात भी नहीं। जमींदार अपने असामियों से खेती कराकर बँटाई या लगान के रूप में जो शोषण करता है, वह तो मशीन के बिना भी होता रहेगा। मशीन जब नहीं थी, तब दास-प्रथा के रूप में भी शोषण होता था। मशीन शोषण का साधन नहीं, वह तो पैदावार का साधन है। शोषण पैदावार करने के साधनों या ढंग से नहीं बल्कि पैदावार को बाँटने के ढंग या व्यवस्था से होता है। मशीन तो केवल पैदा कर सकती है, बाँटती नहीं। शोषण इसलिए होता है कि मशीन से की गई सब पैदावार पूँजीपति

मालिकों के हाथ चली जाती है और वे मनचाहा भाग अपने मुनाफे में रखकर मजदूरों को कम से कम भाग देने का यत्न करते हैं।'

'तो इसका उपाय क्या हो सकता है?' मैनेजर साहब ने प्रश्न किया।

'उपाय तो सीधा है, मशीनों के अधिक उपयोग से पैदावार को खूब बढ़ाया जाए। मशीन को हटाकर पैदावार का काम हाथ से कराने से काम करने वालों की संख्या बढ़ जाएगी परंतु पैदावार नहीं बढ़ेगी। इससे प्रति व्यक्ति की आर्थिक व्यवस्था सुधरेगी नहीं बल्कि और गिर जाएगी। पैदावार के साधनों अर्थात कल-कारखानों और जमीन को कुछ पूँजीपति व्यक्तियों की संपत्ति न रहने देकर परिश्रम करने वाली आम जनता या समाज की संपत्ति बना दिया जाए।'

सिर हिलाते हुए मैनेजर साहब ने अस्वीकार किया - 'नहीं, इस तरीके में हिसा है।'

'तो फिर आप ही कोई उपाय बताइए।'

'इसका उपाय है पूँजीपतियों और जमींदारों को समझाना कि जनता के हित के लिए त्याग करें।' मैनेजर साहब ने उत्तर दिया।'

'परंतु आप तो समझाने का उपाय या कोई दूसरा उपाय, जिससे पैदावार के साधन जनता के हाथ में आ जाएँ, व्यवहार में न लाकर केवल मशीन का विरोध कर रहे हैं। इससे तो समाज का कल्याण हो नहीं सकता। पिछले बीस वर्ष से अहिंसा के प्रचार द्वारा आप कितने लोगों को शोषण न करने के लिए समझा पाए हैं?'

'हम लोग आहिस्ता-आहिस्ता समझाने का यत्न कर रहे हैं परंतु हिंसा के मार्ग को हम स्वीकार नहीं कर सकते।' मैनेजर साहब ने उत्तर दिया।

मैनेजर साहब की न समझने की प्रतिज्ञा से श्री पी.वाई. देशपांडे कुछ ऊब गए। इस व्यर्थ की बहस के बजाय उन्होंने सिगरेट पीना ही बेहतर समझा। जेब से सिगरेट केस निकालते हुए उन्होंने मैनेजर साहब की कुटिया को धुएँ से पवित्र करने की आज्ञा चाही।

मैनेजर साहब ने क्लाक के पैंडुलम की तरह अपना सिर हिलाते हुए आज्ञा देने से इनकार कर दिया। उनके निस्तेज चेहरे पर विजय की मुस्कान भी एक क्षण के लिए दिखाई दी, मानो एक बात में तो उन्होंने हम लोगों को निरुत्तर कर दिया।

उनकी इस आत्मतुष्टि को देखकर श्री देशपांडे के लिए हँसी रोकना कठिन हो गया।

मैं पतलून पहने था। जमीन पर बैठने में मुझे आराम नहीं मालूम पड़ रहा था इसलिए उठकर घूमना ही चाहा। उस चिलचिलाती धूप में हमारे आश्रम पहुँचने पर भी मैनेजर साहब ने हमें जल वगैरा के लिए पूछना आवश्यक नहीं समझा।

देशपांडे साहब को समय काटना मुश्किल हो रहा था। मैनेजर साहब को संबोधन कर उन्होंने पूछा - 'शायद एक गिलास जल तो आप पिला ही सकते है!'

मैनेजर ने स्वीकार किया कि ऐसा वे कर सकते हैं और उन्होंने करके दिखा भी दिया।

अतिथि के प्रति इस व्यवहार को गांधीवादियों का साधारण नियम नहीं कहा जा सकता। वर्धा में गांधी आश्रम के मंत्री और गांधी जी के स्टाफ के मेंबर श्री किशोरीलाल मशरूवाला के यहाँ जाने पर उन्होंने जल और भोजन दोनों के लिए हमें पूछा था। संभवतः अतिथियों के प्रति उपेक्षा करना आश्रम का ही रिवाज है। इसके लिए आश्रमवासियों को दोष भी नहीं दिया जा सकता। हो सकता है, आश्रम देखने आने वालों की संख्या इतनी अधिक हो कि सबको जल पिला देना भी आसान काम न हो। चिड़ियाघर में जाने वाले दर्शकों को भी चिड़ियाघर के निवासी विशेष स्वागत की दृष्टि से नहीं देखते। अलबत्ता चने या मूँगफली के रूप में कुछ भेंट लेकर जायँ तो बात दूसरी हो सकती है।

घड़ी में तीन ही बज पाए थे और गांधी जी से मुलाकात का समय चार बजे था। आश्रम में शायद कोई ऐसा छाया का स्थान न था जहाँ हमें बैठा दिया जाता इसलिए धूप में ही घूमना पड़ा। परेशान होकर सेक्रेटरी साहब की तलाश की। इस समय श्री मशरूवाला वर्धा से आश्रम में आ गए थे। देशपांडे साहब ने उनसे प्रार्थना की कि मुलाकात करा सकते हैं तो कराइए, वरना यों धूप में प्रतीक्षा करते रहना कठिन है। उन्हें इतना कह कर हम लोग आश्रम के बाहर एक वृक्ष के नीचे सड़क पर खड़ी गाड़ी में बैठ सिगरेट जलाकर प्रतीक्षा करने लगे। कुछ मिनट में श्री मशरूवाला सिर पर तौलिया रखे आते हुए दिखाई दिए और सूचना दी कि मुलाकात अभी हो सकती है।

गांधी जी की कुटिया खूब ठंडी थी। दीवारें ईंट की न होकर मिट्टी की हैं, इससे धूप में तपतीं नहीं। छत भी फूस की खूब मोटी और भारी है। गरम हवा को रोकने के लिए टट्टियाँ भी लगी हुई थीं परंतु खस की नहीं। श्री मशरूवाला से पूछा - 'आश्रम के समीप ही वर्धा नदी होने से शायद खस का मूल्य अधिक नहीं देना पड़ेगा फिर खस के स्थान पर फूस क्यों?'

उत्तर मिला - 'खर्च का कोई सवाल नहीं है। प्रश्न भावना का है। खस की सुगंध के साथ नजाकत और अमीरी की भावना जुड़ी हुई है। वह गांधी जी के विचारों के अनुकूल नहीं।'

मशरूवाला साहब का उत्तर उनके दृष्टिकोण से सही है परंतु यदि समान परिश्रम और व्यय से मनुष्य के जीवन को अधिक सुखमय बनाया जा सकता है तो इससे मनुष्य के पतन की संभावना नहीं दिखाई देती। जब अकारण ही विश्राम और सौंदर्य को दूर रखकर गरीबी और कुरूपता को अपनाया जाए तो इसे त्याग के प्रदर्शन के सिवा और क्या कहा जाएगा? साधारणतः यह सादगी नहीं, सादगी का प्रदर्शन ही कहा जाएगा।

कुटिया में फर्श पर एक ओर बिस्तर लगा था। बिस्तर पर गांधी जी लेटे हुए थे। दूसरी ओर दर्शनार्थ आने वाले सज्जन बैठे थे। गांधी जी के सिरहाने एक डेस्क सामने रखे श्री मशरूवाला और उनके समीप श्री कृपालानी बैठे थे। गांधी जी के चरणों के समीप बैठी एक बेन' (बहिन) छत से लगे हल्के पंखे को जल्दी-जल्दी खींच रही थीं। पंखा केवल गांधी जी के बिस्तर पर था। गांधी जी के चरणों की ओर, उनकी दृष्टि के सामने हम लोग भी जा बैठे। एक भीगा कपड़ा गांधी जी के सिर पर, दूसरा पेट पर और एक चिंदी उनकी पाँव की उँगली पर बँधी हुई थी। वे चित्त निढाल से लेटे हुए थे। हमारे आदरपूर्ण नमस्कार का उत्तर गांधी जी ने हाथ जोड़कर दिया।

इतनी दूर जाने का प्रयोजन केवल दर्शन ही नहीं कुछ बातचीत करना भी था परंतु उस परिस्थिति में सहसा कुछ कहते न बन पड़ा। श्री पी.वाई. देशपांडे ने ही बात शुरू की - 'महात्मा जी आपकी तबियत तो ठीक है?'

'तबियत खराब नहीं है।' महात्मा जी ने उत्तर दिया, 'यह इसलिए किया गया है कि तबियत खराब हो न जाए। पेट पर गीली मिट्टी इसलिए रखी गई है कि खून का दबाव न बढ़े और संध्या के समय सैर की जा सके। पैर में पट्टी इसलिए बँधी है कि यहाँ की मिट्टी खराब होने के कारण पैर में बिवाइयाँ फट जाती हैं। अभी बिवाई से खून तो नहीं निकला पर पट्टी न बाँधने से निकल आएगा। यह सब स्वास्थ्य बिगड़ने न देने की सावधानी है।'

यह विश्वास हो जाने पर कि महात्मा जी की तबियत ठीक है, उनकी आज्ञा ले प्रश्न किया - स्वराज्य की माँग राजनैतिक आंदोलन है। राजनैतिक उद्देश्य से स्वराज्य या युद्ध-विरोध पूरे देश की, पूरी जनता की समस्या है। इस आंदोलन को व्यक्तिगत प्रश्न या व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप दे देना कैसे उचित हो सकता है? ऐसा सत्याग्रह करने के लिए भगवान में विश्वास की शर्त लगाना ठीक नहीं। भगवान में विश्वास सार्वजनिक या राजनैतिक प्रश्न नहीं, सांप्रदायिक और व्यक्तिगत प्रश्न है। ऐसी शर्त लगा देने से अनेक राष्ट्रीय कार्यकर्ता, जो राजनैतिक उद्देश्य से जन-

हित के लिए कुर्बानी करने के लिए तैयार हैं, देश की वर्तमान परिस्थितियों में निशस्त्र या अहिंसात्मक आंदोलन की नीति को स्वीकार करते हैं, परंतु भगवान के अस्तित्व को युक्ति से प्रमाणित होते न देख उसे मानने के लिए या झूठ-मूठ विश्वास प्रकट करने के लिए तैयार नहीं, देश की स्वतंत्रता के लिए सत्याग्रह और आंदोलन में भाग लेने से वंचित हो जाते हैं। सार्वजनिक समस्या को व्यक्तिगत आंदोलन बना देना और राजनैतिक आंदोलन में भगवान पर विश्वास की धार्मिक या सांप्रदायिक शर्त लगाना कहाँ तक ठीक है?

गांधी जी ने उत्तर दिया - ईश्वर पर विश्वास को आवश्यक समझने के दो कारण हैं। प्रथम तो यह कि सत्याग्रही के लिए शक्ति और प्रेरणा का स्रोत भगवान के सिवा दूसरा नहीं है। निशस्त्र होकर और शारीरिक रूप से निर्बल होकर भी भगवान के भरोसे ही सत्याग्रही भय का सामना कर सकता है। अपने चरणों के समीप बैठी हुई दो 'बेनों' की ओर संकेत कर, इस बीच में एक और महिला आ बैठी थीं, गांधी जी बोले - यह बेनें तोपों की गरज और तलवारों की चमक का सामना भगवान के भरोसे के बिना कैसे कर सकती हैं? दूसरा कारण है कि इस समय सत्याग्रह का मार्ग दिखाने का काम मैं ही कर रहा हूँ। आशा नहीं मैं अधिक दिन तक जी सकूँगा। मेरी गैरहाजिरी में सत्याग्रहियों को कौन मार्ग दिखाएगा? भगवान से प्राप्त प्रेरणा के अनुकूल मैं सत्याग्रह का मार्ग निश्चित करता हूँ। अपनी गैरमौजूदगी में सत्याग्रहियों से आशा करूँगा कि वे भगवान पर विश्वास कर अपना मार्ग निश्चित करें। इस आंदोलन को व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप भी इसलिए दिया गया है कि इसमें वे ही लोग भाग लें जिन पर मैं विश्वास कर सकता हूँ।

फिर प्रश्न किया - भगवान पर विश्वास करने का उपदेश आप शक्ति और साहस प्राप्त करने के लिए देते हैं परंतु जो लोग किसी दूसरी शक्ति और साहस प्राप्त करने की आवश्यकता न समझ कर स्वयं अपने ऊपर भरोसा करते हैं, उन्हें आप क्यों विश्वास के अयोग्य ठहरा देते हैं? जो व्यक्ति किसी दूसरी शक्ति के भरोसे की आवश्यकता न समझ कर आत्मनिर्भर हो सकता है, उसे ही अधिक साहसी समझा जाना चाहिए। आपके सामने भगत सिंह का उदाहरण है। उसे भगवान से सहारा पाने की आवश्यकता नहीं थी। जिनको आप शारीरिक रूप से निर्बल समझते हैं, उन्हें यदि शारीरिक शक्ति से संघर्ष न कर केवल दृढ़ निश्चय द्वारा अत्याचारी के अत्याचार को सहना है तो उनकी शारीरिक निर्बलता उन्हें सत्याग्रह के मैदान में अयोग्य नहीं बना सकती। जिसे आप भगवान की प्रेरणा कहते हैं, वह भी तो हमारी अपनी ही बुद्धि की समझ और विश्वास है। उसे भगवान की प्रेरणा कह देने से ही क्या विशेष लाभ हो जाएगा? ईश्वर की प्रेरणा कोई निश्चित वस्तु नहीं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के विश्वास और संस्कार के अनुसार वह बदलती रहती है। उस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है?

गांधी जी ने जो कुछ कहा वह अक्षरशः दोहरा देना कठिन है। उसके शार्टहैंड नोट लिए नहीं गए थे। उसका भाव-मात्र यहाँ लिखा जा रहा है। गांधी जी ने कहा - मनुष्य को स्वयं अपने से बड़ी शक्ति पर ही भरोसा करना ठीक है। मनुष्य का विवेक भरोसे के योग्य वस्तु नहीं। मैं आप लोगों को कह देना चाहता हूँ कि आपके मार्ग से सफलता न मिल सकेगी। अनेक कम्युनिस्टों ने मेरे सामने यह स्वीकार किया है।

श्री देशपांडे को महात्मा जी का एकतरफा फैसला कुछ अच्छा न लगा। वे बोले -महात्मा जी, हम भी आपको निश्चय दिला देना चाहते हैं कि आपका मार्ग किसी भी अवस्था में सफल नहीं हो सकता। और दूसरे मार्ग तो इतिहास में अनेक बार सफल हुए हैं परंतु यह मार्ग कभी सफल नहीं हुआ...।

देशपांडे साहब अभी और कुछ कहना चाहते थे परंतु मैं टोक बैठा - महत्मा जी, कम्युनिस्टों या दूसरे ऐसे लोगों के लिए, जो भगवान के बजाय विज्ञान और युक्ति पर विश्वास करते हैं, मार्ग सीधा है। उनका मार्ग अपनी बुद्धि से निश्चित किया हुआ है। यदि एक मार्ग से उन्हें सफलता नहीं मिलती तो वे अपना मार्ग बदल सकते हैं परंतु जो व्यक्ति भगवान की प्रेरणा से मार्ग ग्रहण करता है, उसके लिए मार्ग बदलने की गुंजाइश नहीं क्योंकि भगवान पर विश्वास करने वाला व्यक्ति यह कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि भगवान ने उसे गलत प्रेरणा दी है। वह आपके विश्वास में गलत राह को ही ठीक मान कर अपनी शक्ति समाप्त कर देगा...।

गांधी जी ने स्वीकार किया - नहीं, भगवान की प्रेरणा को समझने में भी कभी गलती हो सकती है और उस गलती को सँभाला भी जा सकता है। मनुष्य भगवान की प्रेरणा को अपनी बुद्धि के अनुसार समझता है।

इस उत्तर से भी हम लोगों को संतोष न हुआ। इसलिए फिर शंका की - यदि प्रेरणा को गलत या सही समझना मनुष्य की बुद्धि पर निर्भर है तो मनुष्य की बुद्धि ही प्रधान वस्तु है। बुद्धि यदि प्रेरणा को न समझे तो प्रेरणा का कुछ मूल्य नहीं। भगवान की प्रेरणा यदि मनुष्य की बुद्धि पर ही निर्भर करती है तो यह भी ऐन मुमकिन है कि मनुष्य की बुद्धि जैसे आवश्यकतानुसार और पदार्थों को बना लेती है उसी प्रकार भगवान की प्रेरणा को गढ़ सकती है। उसके लिए भगवान का अस्तित्व होना जरूरी नहीं है। वह तो कल्पना की बात है। ऐसी काल्पनिक बात को ठोस राजनैतिक आंदोलन का आधार बनाना और उसके आधार पर कुछ लोगों को, जो ईमानदारी से अपनी बुद्धि का निश्चय मानकर देश की जनता के लिए यथाशक्ति कुर्बानी करने के लिए तैयार हैं, राजनैतिक क्षेत्र से बाहर ढकेल देना कहाँ तक उचित है? यह आंदोलन कांग्रेस का है। कांग्रेस के विधान का मौलिक नियम है कि सभी देशवासी, जाति और संप्रदाय के विचार के बिना कांग्रेस के

सदस्य बन सकते हैं। भगवान में विश्वास एक सांप्रदायिक बात है। कांग्रेस के आंदोलन में सांप्रदायिकता की शर्त जोड़ना क्या कांग्रेस पर सांप्रदायिक तानाशाही जमा देना नहीं?

गांधी जी ने गंभीर मुद्रा में प्रश्न किया - तो आपको इसमें क्या इतराज है?

- हमें इसका प्रयोजन ऐसे सचेत राजनैतिक प्रतिद्वंद्वियों को कांग्रेस से निकाल देना जान पड़ता है जो आपकी सांप्रदायिक तानाशाही को आँख मूँद कर मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

गांधी जी का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उन्होंने कुछ और कहना आवश्यक न समझा। मुख दीवार की ओर कर लिया परंतु कृपालानी जी बोले - 'आप लोग गांधी को कनवर्ट करने (विश्वास बदलने) आए हैं?'

'जब हम गांधी जी द्वारा निश्चित किए मार्ग में जनता की भलाई नहीं देखते, देश को स्वराज्य मिलने की आशा नहीं देखते तो ईमानदारी के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी शंका पर विचार करने की प्रार्थना गांधी जी से करें।'

कृपालानी जी ने मजाक किया - 'हाँ ठीक है, मुहम्मद अली भी महात्मा जी को कनवर्ट करने आए थे। वे महात्मा जी को मुसलमान बनाना चाहते थे। तुम इन्हें कम्युनिस्ट बनाना चाहते हो।'

मजाक के उत्तर में मजाक ही सूझा, उत्तर दिया - 'यदि मुहम्मद अली साहब को भगवान ने यह प्रेरणा दी हो कि भगवान की प्रेरणा का रूप इस्लामी होना चाहिए तो उनका यह काम ठीक ही था लेकिन हमारे मामले में एक बात का फरक है। मुहम्मद अली गांधी जी के भगवान के स्थान पर अपना भगवान देने आए थे। यह दो भगवानों में झगड़ा था। हम तो तीसरा भगवान लेकर नहीं आए हैं। हम गांधी जी को भगवान के फंदे से छुड़ाने आए हैं।'

गांधी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मुख दीवार की ओर ही किए रहे। उपस्थित सज्जनों ने करवटें बदलीं, मानो वे उकता गए हों। हम समझ गए, हमारी बातचीत या उपस्थिति यहाँ खल रही है इसलिए उठ जाने का हुकुम मिलने से पहले ही फिर आदरपूर्ण नमस्कार किया और उठ खड़े हुए।

गांधी जी का मुख अब भी दीवार की ओर ही था। वे शायद हमें भूल चुके थे और दूसरी ही बात सोच रहे थे। जाते समय उन्होंने हमारे नमस्कार का उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा।

कृपालानी जी हमें छोड़ आने के लिए साथ ही उठ आए थे। कुटिया से बाहर निकलते ही आपनेपन से मेरे कंधे पर हाथ रख कर बोले - 'बिलकुल गधा है तू।'

'क्यों!' विस्मय से उनकी ओर देखा।

'गांधी को क्रांतिकारी बनाने आया है। वह साला जो कर रहा है, उसे करने नहीं देगा, उसे क्रांतिकारी बनाएगा!' कृपालानी जी साधारण अभ्यास में सभी को साला-गधा कह डालते हैं। उनके मुँह से वह बुरा भी नहीं लगता।

हम लोग श्री देशपांडे की कार में उसी समय नागपुर लौट चले। रास्ते भर अपने प्रश्नों, उत्तरों तथा गांधी जी के व्यवहार को याद कर हँसते रहे। लंबी दौड़ बोझल न जान पड़ी।

नागपुर के पत्र संवाददाताओं को मेरे गांधी जी से मिलकर लौटने की बात मालूम हुई तो दो-चार मिलने आ गए। मुलाकात की बातचीत उन्हें बता देने में कोई संकोच न था। दूसरे ही दिन मध्य भारत के पत्रों में इस मुलाकात की काफी चर्चा हो गई।

उन दिनों 'विप्लव' के संपादन और प्रकाशन का बोझ कंधों पर होने के कारण मैं तुरंत ही लखनऊ लौट आया। सेवाग्राम की यात्रा और गांधी जी से बातचीत के संबंध में उसी समय लिखकर विप्लव के मई 1941 के अंक के लिए प्रेस में दे दिया। उपरोक्त उसी लेख का उद्धरण है।

एक ही सप्ताह के भीतर नागपुर के साथियों का पत्र अखबार की कतरन सहित मिला। यह गांधी जी से मेरी मुलाकात के संबंध में गांधी जी का वक्तव्य था। गांधी जी ने मेरे वक्तव्य की किसी बात का निराकरण न कर केवल खेद ही प्रकट किया था कि मैंने निजी मुलाकात का सार्वजनिक प्रयोग किया है।

गांधी जी के इस वक्तव्य से मुझे विस्मय हुआ क्योंकि मैंने गांधी जी से अपना व्यक्तिगत संबंध हो सकने की कोई कल्पना कभी नहीं की थी। मुलाकात के समय भी मुलाकात को प्रकाशित न करने का कोई संकेत गांधी जी ने नहीं किया था।

कुछ ही दिनों बाद, मई के आरंभ में एक दिन सुबह की डाक से श्रीराम शर्मा 'शिकारी' जी का पोस्टकार्ड मिला। उन दिनों श्रीराम जी 'विशाल भारत' के संपादक थे। श्री शर्मा जी ने अपने इस पोस्टकार्ड में 'विप्लव' में प्रकाशित मेरे लेख के प्रति असंतोष और ग्लानि प्रकट कर लिखा था कि जिस समय हम लोगों ने गांधी जी से बातचीत की, वे भी वहाँ उपस्थित थे। मैंने अपने लेख में

अविनय और झूठ का व्यवहार किया है। वे मेरे लेख का समुचित उत्तर दे रहे हैं। लेख गांधी जी की अनुमति के लिए भेज दिया गया है और उसे 'विशाल भारत' में प्रकाशित करके मेरी शठता का परिहार किया जाएगा।

यह पत्र पढ़कर सबसे अधिक आश्चर्य मुझे इस बात से हुआ कि हमारी बातचीत के समय शर्मा जी उपस्थित थे। शर्मा जी के दर्शन का अवसर मुझे केवल एक बार बिड़ला मंदिर, देहली में साहित्यिकों को दी गई एक चाय पार्टी में मिला था। उस समय उन्होंने मुझसे 'विशाल भारत' के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर लेख लिखने के लिए कहा था। उस समय उनसे हुई बातचीत याद है तो उनकी रूपरेखा भूल जाने की क्या संभावना थी। स्मृति पर बहुत जोर देने से याद आया, जिस समय हम लोगों ने गांधी जी की कुटिया में प्रवेश किया था, एक सज्जन सामान्य शरीर, खद्दर का कुर्ता-धोती और टोपी पहने गांधी जी के बिस्तर के समानांतर दीवार के साथ चटाई पर चुपचाप प्रतीक्षा में बैठे थे। हम लोगों से बात आरंभ करने से पूर्व गांधी जी ने शायद उन्हें पहले निबटा देने के प्रयोजन से उनकी ही ओर देखा था।

इन महाशय ने अपने स्थान से उठकर एक छोटी सी पुस्तिका गांधी जी के चरणों में रखकर निवेदन किया था कि गांधी जी कृपापूर्वक उसे देख लें। इसके बाद वे सज्जन चले गए या बैठे रहे इस पर ध्यान न गया। मेरा पूरा ध्यान गांधी जी की ओर ही लगा था। शर्मा जी के पत्र से मानना पड़ा कि शर्मा जी वहाँ पर रहे होंगे परंतु मुझे तो शर्मा जी की अच्छी स्वस्थ और पुष्ट काया याद है और वे सज्जन थे सामान्य से कुछ न्यून। शर्मा जी को पहचान न सकने की अज्ञान में हुई अभद्रता के लिए मुझे खेद है परंतु 'शिकारी' की तो सफलता इसी बात में है कि शिकार उसे भाँप न पाए।

परंतु 'झूठ' मैंने क्या लिखा? नागपुर के पत्रों में प्रकाशित मेरे वक्तव्य पर खेद प्रकट करते समय गांधी जी ने मेरे वक्तव्य को गलत नहीं बताया था। उन्हें खेद था व्यक्तिगत मुलाकात का सार्वजनिक उपयोग किया जाने पर। शर्मा जी ने गांधी जी द्वारा अनुमोदित अपने जिस लेख का निराकरण करने की धमकी दी थी, उसकी प्रति मुझे कभी मिली नहीं। मैंने शर्मा जी के कार्ड की प्राप्ति की सूचना देते हुए लिख दिया था कि उनका उत्तर देने का यत्न करूँगा। इस पर भी उनका उत्तर में लिखा लेख नहीं मिला।

मेरा उपरोक्त लेख पढ़ कर वर्धा से श्री मशरूवाला जी ने भी एक पत्र लिखा था। उसकी प्रतिलिपि यहाँ दिए देता हूँ।

वर्धा 31-05-41

'श्री यशपाल जी

'विप्लवी ट्रेक्ट' के मई अंक में आपकी सेवाग्राम की मुलाकात को लेकर लिखा हुआ लेख पढ़ा। आपने एक दो बातें गलत जानकारी (information) पर लिखी हैं और उससे कुछ गलतफहमी पैदा होना संभव है।

'यह बात सही नहीं कि गांधी जी का सेक्रेटेरियट वर्धा में है। श्री महादेव भाई वर्धा में नहीं लेकिन सेवाग्राम ही में रहते हैं। मैं, न कोई गांधी आश्रम का मंत्री हूँ और न गांधी जी के 'स्टाफ' का मेंबर हूँ। वास्तव में मैं किसी भी प्रकार का पदाधिकारी नहीं हूँ। सिवाय गांधी सेवा संघ की कार्यवाहक समिति का एक सदस्य हूँ और कर्मचारी। महादेव भाई की अनुपस्थिति में कभी-कभी गांधी जी को उनके पत्र-व्यवहार आदि में मदद करने के लिए सेवाग्राम चला जाता हूँ - यह आजकल की परिस्थिति में एक फालतू (extra) सा काम है।

'सरकार बहादुर ने टेलीफोन लगवा देने में गांधी जी पर कोई मेहरबानी नहीं की है। सिर्फ अपने ग्राहकों की संख्या बढ़ती की है। टेलीफोन के कारण चर्खा संघ, ग्रामोद्योग संघ आदि संस्थाओं के दफ्तर वर्धा में हैं, ऐसा कहना भी गलत होगा। टेलीफोन तो दो-ढाई साल से आया है। ये दफ्तर तो वर्षों से यहीं हैं, खैर।

'श्री शाह के स्वास्थ्य के विषय में आपको जानकारी न होने के कारण आपने उनके बाह्याचार से गलत धारणा कर ली मालूम होती है। वे कुछ काल से रीढ़ (spine) की कमजोरी और दमे के कारण इतने बीमार रहते हैं कि उन्हें अपना काम अधिक समय लेटे रहने की स्थिति में ही करना पड़ता है। मैनेजर से आप विवेचन की अपेक्षा नहीं कर सकते। वे पुराने सेवक हैं, बहीखाता (accountancy) आदि के जानकार हैं। बहुत ही ईमानदार (honest) और विश्वासपात्र (loyal) हैं, सच्चरित्र हैं। अपने साथियों से मिठास से व्यवहार कर सकते हैं इसलिए स्वास्थ्य खराब होते हुए भी उन पर यह जिम्मेदारी डाली गई है।

'हाँ, उन्होंने आपका आतिथ्य वही किया जिस प्रकार दर्शकों (visitors) का यहाँ होता है। उसे देखते ऐसी भूल होना अस्वाभाविक नहीं है। फिर भी आपको तकलीफ हुई इसलिए क्षमा करिएगा। यह अनादर के कारण नहीं असावधानी से हुई मानिए। आपकी विनोद वृत्ति से प्रसन्न हुआ।

आपका

कि.घ. मशरूवाला'

श्री मशरूवाला ने अपने पत्र में जिस 'गलतफहमी की संभावना' की ओर संकेत किया है, उनमें से कोई बात गांधी जी से हुई बातचीत अथवा सिद्धांत को गलत पेश करने के संबंध में नहीं है। गांधी जी का सेक्रेटेरियेट वर्धा में हो या सेवाग्राम में, उससे क्या? टेलीफोन सरकार ने गांधी जी और उनके कार्यक्रम की सुविधा के लिए मेहरबानी से नहीं लगवाया, अपने व्यापारिक लाभ के लिए लगवाया था, ऐसा ही होगा परंतु एक-एक ग्राहक की सुविधा के लिए सरकार चार-पाँच मील तक टेलीफोन का तार खींचती फिरे, ऐसा कभी देखा-सुना नहीं गया। टेलीफोन का जिक्र मैंने इसलिए कर दिया कि गांधी जी सैद्धांतिक रूप से यांत्रिक विकास को मानवता के पतन का कारण समझते हैं।

अतबत्ता आश्रम के मैनेजर श्रीयुत शाह के स्वास्थ्य का विचार न कर उन्हें जबरदस्ती विवेचना में घसीटने की भूल हुई। उनके स्वास्थ्य की बाबत कुछ मालूम नहीं था। जब इतनी दूर गए थे तो आश्रम की विचारधारा को समझने की इच्छा स्वाभाविक ही थी। कुछ मौके की बात कहिए कि भेंट शाह साहब से हुई और हमने उनके स्वास्थ्य और कार्य की बाबत जानकारी न होने से विवेचना में उलझाकर उनके आराम में विघ्न डाला।

सेवाग्राम में हम लोगों का आतिथ्य नहीं हुआ इस बात का कोई गिला नहीं। जिस प्रकार जनता सेवाग्राम के दर्शनों को जाती है उनके लिए शरबत के गिलास और चाय के प्याले लेकर तकल्लुफ में पीछे-पीछे फिरने की न तो आशा ही की जानी चाहिए न ऐसा उचित ही जान पड़ता है। अभिप्राय यह है कि जब जनता सेवाग्राम इतनी संख्या में पहुँचती है कि व्यक्तिगत रूप से उनकी मिजाज-पुर्सी नहीं की जा सकती तो उनके लिए सामूहिक रूप से एक छप्पर ही डाल दिया जाए और जमीन पर कुछ फूस बिछा रहे। जहाँ हम जैसे लोग, जो व्यक्तिगत रूप से प्रसिद्ध और आकर्षक नहीं, बैठकर प्रतीक्षा कर सकें। सेवाग्राम के संबंध में जो कुछ लिखा है वह व्यक्तिगत असुविधा की शिकायत के लिए हिंसा की भावना से नहीं लिखा। प्रयोजन है केवल विचारों की ओर ध्यान दिलाने का।